BIHAR SHODH SAMAAGAM, VOL. 1, ISSUE 2 , p.p 5-8
(2023)

जाति भेद उन्मूलन का विमर्श और डॉ. अंबेडकर का योगदान

राजेश कुमार

प्रस्तावना

जाति भेद उन्मूलन का प्रश्न भारतीय समाज के बहुत बड़े वर्ग के लिए उन निर्योग्यताओं, बंधनों और मानसिकता से मुक्ति का प्रश्न है जो उन्हें सामाजिक, धार्मिक आधार पर विरासत के रूप में मिले हैं। जातिगत भेद–भाव और असमानता की सामाजिक व्यवस्था ने समाज में शोषित और शोषक वर्ग के रूप में एक गहरा विभाजन पैदा कर दिया है जिनके मध्य का संघर्ष न सिर्फ इन दोनों वर्गों के जीवन बल्कि संपूर्ण सामाजिक ताने बाने को प्रभावित कर रहा है। ऐसी चुनौतिपूर्ण सामाजिक परिस्थिति में डॉ. अंबेडकर के सामाजिक न्याय, समता और बन्धुत्व की स्थापना से प्रेरित विचारों को आत्मसात करने एवं एक श्रेष्ठ संस्कृति के रूप में उनका व्यावहारिक हस्तान्तरण करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं दिखता। अतः प्रस्तुत लेख में सामाजिक संबंधों के उन सद्भाविक स्वरूपों को, जाति भेद उन्मूलन के विकल्प के रूप में वर्णित करने का प्रयास किया गया है जो डॉ. अंबेडकर के विचारों, जीवन संघर्षों और बलिदानों का प्रतिफल है।

विषय विस्तार

भारतीय सामाजिक संरचना में प्रारम्भ से ही वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, जजमानी प्रथा आदि के साथ–साथ अन्तर्जातीय सम्बन्धों की व्यवस्था देखने को मिलती रही है। यह सम्बन्ध जातीय संस्तरण एवं सामाजिक, आर्थिक स्तर पर निर्धारित होते रहें हैं। अन्तर्जातीय सम्बन्धों में जातियों की प्रकृति (स्वच्छ, अस्वच्छ, अपवित्र) सामाजिक सम्बन्ध, सहभोज सम्बन्ध, वैवाहिक सम्बन्ध, व्यावसायिक एवं आर्थिक सम्बन्ध एवं धार्मिक कृत्यों को शामिल किया जाता है। जाति ही व्यक्ति की पारिवारिक, सामाजिक जीवन प्रणालियों, उनके निवास स्थानों तथा सांस्कृतिक प्रतिमानों को निश्चित करती है। व्यक्ति क्या खायेगा, किसके हाथ का बना खायेगा, किसके साथ खायेगा, किसके हाथ का पानी पीयेगा, किसके यहाँ अन्न–जल ग्रहण करेगा, कौन सा व्यवसाय करेगा एवं समाज में उसके सम्बन्धों का दायरा कहाँ तक होगा आदि का निर्धारण उसके जन्म से पूर्व ही जाति व्यवस्था द्वारा हो जाता है। समाज में व्यक्ति अपनी जाति प्रस्थिति के अनुसार ही अन्य जातियों से जीवन के विविध पक्षों में सम्बन्ध स्थापित करता है। स्पष्ट है कि जाति ही अन्तर्जातीय सम्बन्धों की व्यवस्था में व्यक्ति के व्यवहार प्रतिमान को निश्चित, नियन्त्रित एवं निर्देशित करती है। जाति सोपान क्रम में अपनी निम्न स्थिति के कारण प्रारम्भ से ही अमानवीय सामाजिक स्थिति में जी रहे, सामाजिक आर्थिक परम्पराओं से शोषित, राजनैतिक अधिकार शून्यता, तुच्छ एवं अस्वच्छ कार्यों को करने के लिए विवश, अस्पृश्य समझा जाने वाला दलित वर्ग अन्तर्जातीय सम्बन्धों की व्यवस्था में अपनी जाति प्रस्थिति के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य था। जातीय नियमों के अनुसार उनके सम्बन्धों का दायरा भी संकुचित था। ग्राम पंचायतों की बैठक, सभाओं आदि में वे अपनी जाति की जातिगत प्रस्थिति के अनुसार ही अपने पूर्व निर्धारित स्थान पर बैठते थे। उच्च जातियों के समक्ष उन्हें कुर्सी, चारपाई आदि ऊँचे स्थानों पर बैठना प्रतिबन्धित था, उच्च जाति के लोग उन्हें आदर सूचक शब्द या आदर से सम्बोधित न करके अपमान जनक एवं उपहासिक शब्दों का प्रयोग करते थे जिनका दलित अपनी निम्न जाति प्रस्थिति, गरीबी एवं उच्च जातियों पर व्यावसायिक एवं आर्थिक निर्भरता के कारण विरोध नहीं कर पाते थे। उन्हें स्वयं से श्रेष्ठ और स्वयं को उनसे निकृष्ट समझते थे और उनसे दूरी बनाते हुए भय एवं श्रद्धापूर्ण व्यवहार करते थे। यहां यह स्पष्टीकरण करना आवश्यक है कि जाति के भेद–भाव पर आधारित मनोभाव तथा व्यवहार प्रतिमान केवल उच्च जातियाँ दलितों के प्रति ही नहीं अपनाती बल्कि निम्न जातियाँ भी जाति के भेदभाव पर आधारित मनोभाव एवं व्यवहार प्रतिमानों का पालन उच्च जातियों के लिए करती हैं। ऐसी मनोसामाजिक स्थिति में अन्तर्जातीय सम्बन्धों में सुधार और जाति व्यवस्था के अन्त की कल्पना भी नहीं की जा सकती। चिन्तन के इस स्तर पर आकर हमें उस पृष्ठभूमि के दर्शन होते हैं जिस पर डॉ. अम्बेडकर ने जाति मुक्ति के अपने विचारों की व्यावहारिकता को संवैधानिक नियमों में समावेशित करने का महान कार्य किया। यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि अपनी बहुसंख्यक स्थिति एवं जैविक दृष्टि से समान होने के बावजूद भी दलित वर्ग आजीवन उपेक्षित और बहिष्कृत रहा। दलितों के इस दयनीय जीवन के उत्तरदायी कारणों को ढूंढ़ने की आवश्यकता डॉ. अंबेडकर को नहीं थी क्योंकि वे स्वयं इस समाज का हिस्सा थे। जिन्होंने अपने जीवन के पग–पग पर घोर अपमान, अमानवीय व्यवहार और भारी यन्त्रणा की स्थितियों को भोगा था। एक बार उन्होंने एक पत्रकार से कहा था, "मेरे दुःख, दर्द और मेहनत को तुम नहीं जानते, जब सुनोगे, रो पड़ोगे।" डॉ. अंबेडकर का यह कथन उनके जीवन के विविध क्षेत्रों में उच्च स्तर के लोगों द्वारा अन्याय एवं भेदभावपूर्ण व्यवहारों को बयां करता है। डॉ. अंबेडकर यह जानते थे कि दलितों की समाज में जो स्थिति है उसके लिए स्वयं दलित भी उत्तरदायी हैं। क्योंकि जब तक दलित स्वयं को अयोग्यता के दायरे से निकालने का प्रयास नहीं करेंगे तब तक उनके अन्तर्जातीय संबंधों में सुधार नहीं हो सकता। अतः उन्होंने इस बात पर बल दिया कि अछूतों को अपनी बुरी आदतों और हीनता की भावना का त्याग कर आत्मसम्मानपूर्ण जीवन की ओर प्रवृत्त होना चाहिए। इस प्रकार दलितोद्धार के लिए डॉ. अंबेडकर ने कोरे सैद्धान्तिक दृष्टिकोण नही, वरन यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया और अस्पृश्यों तथा दलितों को अपनी परम्परागत दासता और हीनता की भावना त्यागकर समाज के अन्य वर्गों के समान स्वतन्त्रता और मानव–अधिकार हासिल करने का आह्वान किया। उनका विचार था कि अछूतों में स्वतन्त्रता,

राजेश कुमार
प्रोफेसर बनारस हिंदु विश्वविद्यायल, बनारस

समानता और स्वाभिमान से जीवन बिताने की इच्छा होनी चाहिये और इसके लिए उन्होंने अछूतों को संगठित होने, शिक्षित होने तथा अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष करने का सुझाव दिया। उनका विचार था कि 'धर्म व्यक्ति के लिए है' व्यक्ति धर्म के लिए नही' और जो कोई धर्म मनुष्य–मनुष्य के बीच भेदभाव की स्थिति को बढ़ावा देता है, अपने ही अनुयायियों के एक वर्ग को दूसरे वर्ग के अधीन रहने के लिए प्रेरित और बाध्य करता है, वह धर्म नहीं वरन मानवता का अपमान है। उन्होंने समझा कि हिन्दू समाज का एक वर्ग हिन्दू समाज के दूसरे वर्ग के प्रति जिस प्रकार की अन्याय भावना को अपना रहा है, उसमें हिन्दू धर्म की भी भूमिका है, और इस बात ने उनके मन–मस्तिष्क में हिन्दू धर्म के प्रति तीखी विरोध भावना को जन्म दिया। इस संदर्भ में विचारणीय प्रश्न यह है कि हिन्दू धर्म का विरोध करने के बावजूद उन्होंने 1930 में कालाराम मन्दिर प्रवेश जैसा सत्याग्रह क्यों किया और इससे भी पूर्व सामाजिक अथवा सार्वजनिक क्षेत्र में महद तालाब सत्याग्रह 1927 और गंगा सागर तालाब का पानी पीने के लिए संघर्ष क्यों किया। यदि वे चाहते तो दलितों के लिए पृथक पूजा स्थलों एवं जल स्त्रोतों का निर्माण कर सकते थे लेकिन उन्होंने ऐसा न करके सामाजिक समता और न्याय की अवधारणा पर आधारित मार्ग का चुनाव किया जिसका उद्देश्य दलितों में उनके अधिकारों के प्रति चेतना जागृत करना था। इस प्रकार डॉ. अंबेडकर ने हिन्दुओं के व्यवहार में परिवर्तन लाने पर बल दिया और कहा कि यह सत्याग्रह हिन्दुओं का हृदय परितर्वन करने के लिए है। डॉ. अंबेडकर का दृढ़ विश्वास था कि जिस समाज में सामाजिक चेतना न हो और जो स्वयं को सामाजिक परिवर्तनों के अनुरूप ढ़ालने में समर्थ न हो, वह समाज कभी प्रगति नही कर सकता है। उनका विरोध केवल जाति विशेष के प्रति वैमनस्य अथवा दुर्भावना से प्रेरित न होकर ठोस सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों पर आधारित था। अंबेडकर ने सामाजिक न्याय पर आधारित एक ऐसे समतावादी एवं स्वतन्त्र समाज के निर्माण की कल्पना की जिसमें समाज का एक वर्ग दूसरे वर्ग पर शासन न करे और जातियों के आपसी सम्बन्ध पारस्परिक सहयोग और भ्रातृत्व की भावना पर आधारित हों। सामाजिक न्याय को समाज में प्रभावी होने के लिए लोगों में भाईचारे की भावना का पाया जाना जरूरी है। डॉ. अंबेडकर ने दलितों और सवर्णों को समाज के दो हाथों के समान माना। यदि मनुष्य का एक हाथ क्षतिग्रस्त होता है तो वह पंगु हो जायेगा। इसी प्रकार दलित वर्ग की अनदेखी होने पर समाज की व्यवस्था भी पंगु हो जायेगी। अतः समाज में वर्णभेद नहीं होना चाहिए। सच तो यह कि दलितों और सवर्णों के परस्पर सहयोग से ही देश की प्रगति सम्भव है। कोलम्बिया विश्वविद्यालय का जीवन डॉ. अंबेडकर के लिए दिव्य प्रकाश देने वाला था। वहाँ वे विद्यार्थियों के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक घूम सकते थे। भारत की तरह वहाँ सामाजिक प्रतिबन्ध नहीं था और उनकी गतिविधियों पर अछूतपन का अभिशाप नहीं था। वहाँ सबके साथ समानता का व्यवहार किया जाता था। अंबेडकर के लिए यह सब नये संसार की भांति था। इसने उनके मानसिक क्षितिज को विस्तृत कर दिया। उनकी बुद्धि और गहन दृष्टि को विकास के लिए एक उचित वातावरण मिला। ऐसे ही वातावरण का निर्माण डॉ. अंबेडकर भारतीय समाज में भी करना चाहते थे जिसका प्रारम्भ उन्होंने जाति मुक्ति संघर्ष के दौरान बड़े ही तार्किक ढंग से किया। उनकी आक्रोशित घृणा जाति नही बल्कि उस व्यवस्था के प्रति थी जिसने समाज में जातियों के आपसी सम्बन्धों में विष घोल दिया था। इस सन्दर्भ में उन्होंने कहा कि – "मैं घृणा करता हूँ अन्याय से, अत्याचार से, बनावटी गौरव और वैभव से, बकवास से और व्यर्थ के विवाद से और मेरी घृणा की लपेट में वे सभी व्यक्ति आते हैं जो इन सब बातों से ग्रस्त हैं।" "डॉ. अंबेडकर इस बात से भलीभाँति अवगत थे कि यदि जाति प्रथा को समाप्त करना है तो दलितों और उच्च जातियों के मध्य के सम्बन्धों में परिवर्तन लाना आवश्यक है और यह तभी संभव हो सकता है जब दलित अपनी हीनता को त्याग कर समाज का उपयोगी और जरूतरमंद हिस्सा बने। जब तक जातियों के आपसी सम्बन्ध सरल, सहयोगी एवं सामुदायिक भावना पर आधारित नही होंगे तब तक समाज में जातिप्रथा का अन्त नहीं हो सकता। डॉ. अंबेडकर चाहते थे कि समाज के लोग जातीय पूर्वाग्रहों को त्यागकर अछूतों को बराबरी का दर्जा दे और उन्हें विश्वास था कि यह समस्या केवल बहुजन और सवर्ण समाज के हृदय परिवर्तन से ही सुलझ सकती है। अतः उच्च जातियाँ निम्न जातियों के साथ अच्छा बर्ताव कैसे करें? इसक लिए डॉ. अंबेडकर ने संघर्ष करने का सुझाव देने के साथ ही अन्तर्जातीय विवाह का भी सुझाव दिया। उनका मानना था कि खून का मिलना ही अपनेपन की भावना का विकास कर सकता है और जाति प्रथा को खत्म करने का यही एक मार्ग है।

वर्तमान समय में डॉ. अंबेडकर के विचारों की प्रासंगिकता

अंबेडकर के विचारों की प्रासंगिकता वर्तमान समय में इस दृष्टिकोण पर आधारित है कि दलितों के संरक्षण एवं विकास के तमाम संवैधानिक और गैर संवैधानिक प्रयासों के बावजूद दलितों का शोषण और उन पर अत्याचार अक्षुण्ण रूप से जारी है। ऐसी परिस्थितियों में कानून का प्रभावी ढंग से निरन्तर पालन और अन्तर्जातीय संबंधों में बदलाव से ही सुधार की अपेक्षा की जा सकती है और यह तभी सम्भव होगा जब न केवल उच्च जातियाँ अपनी सोच में बदलाव लाये बल्कि दलित भी स्वच्छ, स्वस्थ, शिक्षित और संगठित हो, अपनी निर्योग्यताओं और पिछड़ेपन को समाप्त कर अपने आपको इस योग्य बनाये कि समाज में उन्हें सहज रूप से स्वीकार किया जा सके। औद्योगीकरण, नगरीकरण, शिक्षा की सार्वभौमिक व्यवस्था एवं प्रचार–प्रसार, संवैधानिक प्रावधानों एवं हस्तक्षेपों एवं सरकार की समावेशी नीतियों विशेषकर दलितों के मताधिकार के परिणामस्वरूप जाति व्यवस्था आधारित सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन की स्वाभाविक प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी है। इसका सीधा प्रभाव दलितों के जीवन पर पड़ा है और उनके अन्तर्जातीय सम्बन्ध सरलीकृत रूप में स्पष्ट होने लगे हैं। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जाति सम्बन्धी विचारधारा पूरी तरह से परिवर्तित या समाप्त हो चुकी है। जाति व्यवस्था एवं दलितों के अन्तर्जातीय संबंधों में परिवर्तन कुछ विशिष्ट आधारों पर निर्धारित हैं। संबंध चाहे अन्तर्जातीय हो या अन्तःजातीय वे व्यवहारिक रूप से कुछ आधारों पर निर्धारित हो रहे हैं। वर्तमान समय में अन्तर्जातीय सम्बन्धों में जो बदलाव

देखने को मिल रहे हैं वास्तव में उनका आधार आर्थिक एवं राजनैतिक है। अन्तर्जातीय सम्बन्धों के अन्तर्गत दलितों के सामाजिक सम्बन्धों में आज भी उच्च जातियाँ दलितों को आदर सूचक शब्द से सम्बोधित नहीं करती हैं। भोज अवसरों पर जहाँ कुछ उच्च जातियाँ दलितों को सम्मिलित करती हैं, वहीं कुछ जातियाँ आज भी अन्तर्जातीय सहभोज निषेधों का पालन करती हैं। कई मामलों में उच्च जातियाँ दलितों को अपने भोज अवसरों में सम्मिलित तो करती है लेकिन उनके साथ एक ही पंक्ति में साथ बैठकर भोजन करना पसन्द नहीं करतीं और दलितों के लिए अलग बैठने एवं बाद में भोजन करने की व्यवस्था की जाती है। बिल्कुल यही प्रक्रिया (बाद में खिलाने वाली व्यवस्था को छोड़कर) दलितों को अपने भोज अवसरों में भी अपनानी पड़ती है, अन्तर केवल इतना है कि उच्च जातियाँ अपने भोज अवसरों में दलितों के लिए इस प्रकार की व्यवस्था जातीय भावना से प्रेरित होकर छुआछूत और उच्चता–निम्नता के आधार पर करती हैं, वहीं दलित अपने भोज अवसरों में उच्च जातियों के लिए यह व्यवस्था उनके सम्मान और अपनी निकृष्टता के आधार पर करते हैं। घरेलू बर्तनों के उपयोग के सम्बन्ध में भी उच्च जातियाँ दलितों के लिए अलग बर्तनों की व्यवस्था करती हैं। व्यावसायिक सम्बन्धों के अन्तर्गत आज भी कुछ दलित जाति के सदस्य अपने परम्परागत पेशों को अपनाये हुए हैं। विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की निरन्तरता एवं उनके सही मूल्यांकन का अभाव, शिक्षा की दोषपूर्ण एवं महंगी व्यवस्था तथा रोजगार के अवसरों के अभाव, के कारण दलित वर्ग आज भी उपेक्षित है और अन्य जातियों पर व्यावसायिक एवं आर्थिक निर्भरता के कारण सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनैतिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। वैवाहिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में अन्तर्जातीय विवाह निषेध का जितना पालन उच्च जातियाँ कर रहीं हैं उतना ही पालन दलित भी कर रहें हैं अर्थात जाति के भेद–भाव आधारित उच्च जातियों के मनोभाव तथा व्यवहार प्रतिमान केवल दलितों के लिए ही नहीं हैं बल्कि दलित अथवा निम्न जातियाँ भी जाति के भेद–भाव आधारित मनोभाव एवं व्यवहार प्रतिमानों का पालन उच्च जातियों के लिए कर रहीं हैं। हालांकि वर्तमान समय में अन्तर्जातीय विवाह बहुत असामान्य नहीं है फिर भी निम्न हो या उच्च जाति सभी अपनी ही जाति में विवाह करना अधिक पसन्द कर रहें है। वर्तमान समय में जहाँ दलितों की विभिन्न निर्योग्यताओं के साथ–साथ उनकी धार्मिक निर्योग्यतायें भी समाप्त हो रही हैं वहीं आज भी पुरोहित का कार्य केवल ब्राह्मणों को ही वंशागत रूप से प्राप्त है। शायद ही किसी देवालय में कोई दलित पुरोहित का कार्य करता हो और समाज द्वारा उसे स्वीकार किया जाता होगा या जायेगा। जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि जातीय नियमों का पालन एवं जाति आधारित मनोभावों तथा व्यवहार प्रतिमानों को केवल उच्च जातियाँ ही निम्न जातियों के प्रति नहीं अपनाती बल्कि निम्न जातियाँ भी उच्च जातियों के प्रति जाति के नियमों, मनोभाव तथा व्यवहार प्रतिमानों को अपनाती है। वर्तमान समय में दलितों की दयनीय स्थिति के लिए केवल उच्च जातियों को ही जिम्मेदार या दोषी ठहराने का विचार पूर्वाग्रहपूर्ण एवं सामाजिक न्याय के विरूद्ध होगा क्योंकि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया ने अन्तर्जातीय सम्बन्धों को ही प्रभावित नहीं किया है उसका व्यापक प्रभाव अन्तःजाति सम्बन्धों पर भी पड़ा है। संस्कृतिकरण की प्रक्रिया द्वारा निम्न जातियों ने उच्च जातियों के रहन–सहन, खान–पान अथवा सम्पूर्ण जीवन शैली को ही नहीं अपनाया है बल्कि, उन विचारों एवं मनोवृत्तियों को भी अपनाया है जिसके कारण वे परम्परागत रूप से शोषित और बहिष्कृत रहे हैं। प्रजातंत्र की स्थापना ने जहाँ दलितों को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सहभागिता के स्वतंत्र एवं नवीन अवसर प्रदान किये हैं, वहीं उनमें जातिवादी और अत्यधिक व्यक्तिवादी प्रवृत्ति को भी बढ़ाया है। निम्न जातियों में पढ़ा–लिखा व्यक्ति उच्च आर्थिक सामाजिक स्थिति प्राप्त करने के पश्चात केवल अपने ही व्यक्तिगत हितों के बारे में सोचता है। वह अन्तःजातीय सम्बन्धों में अपनी ही जाति के व्यक्ति से विभिन्न आधारों जैसे– सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं रहन–सहन की रीतियों के आधार पर असमानता का व्यवहार करता है। अपनी जाति की अपेक्षा वह उच्च जातियों को अधिक महत्व देता है। दलित जातियों के आपसी भेदभावपूर्ण नीतियों के कारण उनमें एकता का अभाव है। जिसके कारण वे संगठित रूप से अपने अधिकारों हेतु और अपने उपर हो रहे अत्याचारों के विरूद्ध संघर्ष नहीं कर पा रहे हैं। उच्च प्रस्थिति प्राप्त किया हुआ, व्यक्ति उसी शोषणकारी संरचना का हिस्सा बन रहा है जिसमें कभी वह शोषित और प्रताड़ित था। अतः स्पष्ट है कि जाति व्यवस्था में परिवर्तन के साथ निरन्तरता बनी हुई है। यदि जाति व्यवस्था को समाप्त करना है तो इसके लिए न केवल हमें अन्तर्जातीय सम्बन्धों में सुधार करना चाहिए बल्कि अन्तःजातीय सम्बन्धों में भी व्यापक सुधार की आवश्यकता है। जिसमें अंबेडकर के विचार हमारे लिए सबसे बड़े मार्गदर्शक सिद्धांत सिद्ध हो सकते हैं।

सन्दर्भ

थोराट, सुखदेव, 2011, भारत में दलित, रावत पब्लिकेशंस

देसाई, ए.आर. 2007, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन इंडिया, दरियागंज, नई दिल्ली

आहूजा राम, 2009, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

सिंह, जे.पी., 2008, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, प्रेंटिस हाल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली

ओमवेट गेल, 2009, दलित और प्रजातान्त्रिक क्रान्ति, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

गुप्ता, शर्मा, 2009, भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

सिंह, रामगोपाल, 2011, भारतीय दलित समस्याएँ एवं समाधान, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

अम्बेडकर, बी.आर., 2010, जातिभेद का बीजनाश, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली

अम्बेडकर, बी.आर., 2010, स्वराज की दिशा, मध्य प्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल (मप्र.) सिंह, रामगोपाल, 2010, कश्यप, आलोक कुमार, 2013, भारत में अनुसूचित जातियाँ कल और आज, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, दरियागंज, नई दिल्ली

चन्द्रा, मनीष, 2015, डॉ. भीमराव अम्बेडकर और सामाजिक न्याय की अवधारणा, टाइम्स पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

सिंह, सुनिल कुमार, 2010, जाति व्यवस्था निरन्तरता एवं परिवर्तन रावत पब्लिकेशन्स, जवाहर नगर, जयपुर श्रीनिवास, दुबे, अभय कुमार 2002, आधुनिकता के आइने में दलित, वाणी प्रकाशन प्रा.लि. दरियागंज, नई दिल्ली

सिंह, रामगोपाल, 2002, डॉ. अम्बेडकर का विचार दर्शन, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल (म.प्र.)

तिवारी, जयकान्त, 2003, भारत का समाजशास्त्र, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, लखनऊ

सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर